सूख रहे जलाशय

देश के कई हिस्से जल संकट से जूझ रहे हैं. मॉनसून-पूर्व बारिश के कम होने की वजह से हालात तेजी से बिगड़ रहे हैं. ऐसे में बड़े जलाशयों का स्तर लगातार नीचे जाना बेहद चिंताजनक है. केंद्रीय जल आयोग के अनुसार, 91 बड़े जलाशयों में उनकी क्षमता का सिर्फ 20 फीसदी पानी बचा है. इनमें 30 मई तक 31.65 अरब घन मीटर पानी था. स्थिति की गंभीरता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 23 से 30 मई के बीच एक फीसदी पानी कम हो गया. पश्चिमी और दक्षिणी भारत के जलाशयों में बीते एक दशक के औसत से भी कम पानी है. राजस्थान, झारखंड, ओड़िशा, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और केरल में इसी अवधि में पिछले साल की तुलना में कम पानी है. महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र के जलाशयों में तो पानी इतना कम कभी नहीं हुआ था. देश के पश्चिमी भाग, जिसमें महाराष्ट्र और गुजरात शामिल हैं, के 27 बड़े जलाशयों में तो उनकी क्षमता का बस 11 फीसदी पानी है. पिछले साल महाराष्ट्र एवं गुजरात में मॉनसून की बारिश कम हुई थी. पिछले महीने स्काइमेट ने अपने अनुमान में बताया था कि महाराष्ट्र के विदर्भ व मराठवाड़ा क्षेत्रों, पश्चिमी मध्य प्रदेश तथा गुजरात में सामान्य से काफी कम बारिश हो सकती है, जबकि दक्षिण भारत में भी मॉनसून कमजोर रहेगा. जून और जुलाई के महीनों में भी कम बारिश की आशंका है. मार्च के आखिरी दिनों के विश्लेषण के आधार पर भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (गांधीनगर) ने जानकारी दी थी कि देश का 42 फीसदी जमीनी इलाका सूखे जैसी स्थिति का सामना कर रहा है. अब यह दायरा तेजी से बढ़ता हुआ दिखायी दे रहा है. इसका एक निष्कर्ष तो यह है कि तमाम संकेतों के बावजूद केंद्र और राज्य सरकारों ने सूखे से निबटने के लिए फौरी तौर पर कदम उठाने में कोताही बरती है. साल 2018 में अक्तूबर और दिसंबर के बीच सामान्य से 44 फीसदी कम बारिश हुई थी. इन तीन महीनों में जो बरसात होती है, वह सालभर की बरसात का 10 से 20 फीसदी होती है. इसके अलावा बीते साल मॉनसून में भी बारिश सामान्य से 9.4 फीसदी कम हुई थी. कमजोर मॉनसून 2015 से ही परेशानी की वजह बना हुआ है. साल 2017 में अच्छी बरसात से खाद्यान्न उत्पादन भी बढ़ा और जलाशयों में पानी भी जमा हुआ, परंतु उसके बाद बारिश में लगातार कमी रही. भूजल के स्तर में गिरावट बहुत लंबे समय से जारी है तथा पानी के संचयन और प्रबंधन में लचर व लापरवाह रवैये ने भी स्थिति को विकराल बनाने में योगदान दिया है. जल संकट ने जहां एक ओर भूजल के दोहन को तेज कर दिया है, वहीं जलाशयों के बचे हुए पानी पर भी दबाव बढ़ा दिया है. सूखा और जल-संकट अर्थव्यवस्था की गति को अस्थिर कर सकते हैं. ऐसे में केंद्र और राज्य सरकारों को इस मुश्किल से निबटने के लिए आपात उपाय करना चाहिए. अब देरी की कोई गुंजाइश नहीं है.

जल संकट ने जहां एक ओर भूजल के दोहन को तेज कर दिया है, वहीं जलाशयों के बचे हुए पानी पर भी दबाव बढ़ा दिया है.

उच्च शिक्षा के प्रति जिम्मेदारी

मणींद्र नाथ ठाकुर
एसोसिएट प्रोफेसर, जेएनयू
manindrat@gmail.com

चुनाव का मौसम खत्म हुआ. अब ठोस नीतिगत फैसलों की जरूरत है. जिस तरह जनता ने एक मौका और दिया है, उससे सत्तारूढ़ पार्टी समूह के लिए आनेवाले दिन अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी. यदि सही नीतियां नहीं बनीं, तो देश की जनता उतनी ही बेरहम हो सकती है, जितनी सहृदय है. इस सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती उच्च शिक्षा में नीतिगत फैसलों की है. सरकार से जुड़े एक महत्वपूर्ण व्यक्ति ने एक साक्षात्कार में जो बातें कही हैं, उससे नौकरियों के लिए इंतजार कर रहे छात्रों के मन में कुछ अनिष्ट की शंका उत्पन्न हो गयी है.

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बिहार मॉडल को भले ही सफल नहीं माना जा सकता है, लेकिन हाल में हुए शिक्षकों के चयन से बड़ी उम्मीद जगी है. शायद पहली बार सरकार के विरोधियों से भी आप सुन सकते हैं कि इसने यह काम बिल्कुल निष्पक्ष और उत्तम तरीके से किया है. सैकड़ों छात्र जिनका चयन हुआ है और जिनका नहीं हो पाया है, दोनों से आप सुन सकते हैं कि चयन का यह तरीका अनुकरणीय है. केंद्र सरकार और अन्य राज्य सरकारों को बिहार से यह नुस्खा ले लेना चाहिए. यदि इसी तरह से सरकार आगे भी चयन करने में सक्षम होती है, तो हम बेझिझक कह सकते हैं कि बिहार में उच्च शिक्षा के अच्छे दिन आनेवाले हैं. सारी कमियों के बावजूद राज्य में स्कूली शिक्षा को हर बच्चे तक पहुंचाने के प्रयास की आप सराहना किये बिना नहीं रह सकते हैं. शायद आनेवाले समय में ऐसा ही कुछ विश्वविद्यालयों में भी होना संभव हो.

यदि बिहार के इन युवा बुद्धिजीवियों को सही ढंग से सहयोग दिया गया तथा महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को सुधारने की सही नीतियां बनायी गयीं, तो वह दिन दूर नहीं है, जब हमारे बच्चे केवल बीए की डिग्री के लिए भागे-भागे नहीं फिरेंगे. राज्य की आय का बहुत बड़ा हिस्सा इन प्रवासी छात्रों के माध्यम से दूसरे शहरों में जाने से बच जायेगा. सरकार को 'स्कूल ऑफ कॉम्पिटिशन' बना कर 'कोटा फैक्टरी' जैसे शिक्षा के बाजार को भी ध्वस्त कर देना चाहिए, जहां छात्र और शिक्षक तो बिहारी हैं, परंतु उनसे धन कोई और ऐंठ रहा है. बिहार के विकास का रास्ता शिक्षा से होकर ही गुजरता है. आखिर कोई कारण तो रहा होगा कि प्राचीन विश्वविद्यालयों में ज्यादातर इसी राज्य में थे और न जाने कितने दर्शन और ज्ञान-विज्ञान का विकास इस भूमि पर हुआ है.

बिहार में हुए चयन की तुलना यदि दिल्ली विश्वविद्यालय से की जाय, तो बात और समझ में आ जायेगी. पिछले कुछ वर्षों में जो चयन प्रक्रिया दिल्ली विश्वविद्यालय में अपनायी गयी है, वह इन युवा बुद्धिजीवियों के लिए बेहद अपमानजनक रही है. भारत के बुद्धिजीवियों की यह पीढ़ी न केवल वर्षों तक 'एडहॉक' (अस्थायी) शिक्षक के रूप में कार्यरत रहने के लिए अभिशप्त है, बल्कि उसके लिए भी विभाग में शर्मनाक ढंग से जी-हुजूरी करनी पड़ती है. उनके स्वाभिमान को पूरी तरह से कुचल दिया जाता है. कुछ ही रसूखदार प्रोफेसरों को जिनकी राजनीतिक गलियारे में पहुंच है, हर साक्षात्कार के लिए भेजा जाता है. और, वहां साक्षात्कार कम और उपस्थित चयन टीम में बाजीगरी ज्यादा होती है. साक्षात्कार के लिए आये बच्चों के चेहरों का दर्द आपको बता सकता है कि यहां तो मैच फिक्सिंग हो चुकी है. यह व्यवस्था सामंतवाद की याद दिलाती है. केंद्र सरकार को भी बिहार सरकार के इस प्रयोग से सीखना चाहिए, ताकि एक निष्पक्ष चयन प्रक्रिया चल सके.

ज्ञान उत्पादन केंद्र को बौद्धिक स्वतंत्रता देने की जरूरत होगी. यदि शासक वर्ग विश्वविद्यालयों को अपने अधीनस्थ करने का प्रयास करेंगे, तो वहां बुद्धिजीवी नहीं, बल्कि जयघोष करनेवाले चारण ही रह जायेंगे.

विश्वविद्यालयों की गुणवत्ता के लिए चयन की प्रक्रिया का सही होना क्यों जरूरी है? सबसे बड़ी बात है कि इससे शिक्षकों में चयनकर्ताओं के प्रति अनुगृहीत होने के बदले आत्मसम्मान का भाव होगा. आज की हालत में रसूखदार प्रोफेसरों के परिक्रमा करने के अपमान से उनकी रक्षा होगी. अपनी संपूर्ण क्षमता के साथ काम कर पाने के लिए शिक्षकों में आत्मसम्मान का भाव बेहद जरूरी है. उनके वैचारिक स्वतंत्रता के लिए यह अति आवश्यक है. जिन शिक्षकों को कृपा के कारण नियुक्तियां मिली हैं, उनमें जो कुंठा पैदा होती है, वह ज्ञान के पेशे के लिए सबसे घातक है.

उम्मीद है कि आनेवाले समय में राजनीतिक हस्तक्षेप के बिना नियुक्तियां हो पायेंगी. विश्वविद्यालयों में राजनीतिक विचारधाराएं तो हो सकती हैं, क्योंकि ये आखिर विश्वविद्यालय हैं, सचिवालय नहीं हैं. लेकिन, इन्हें सरकारी हस्तक्षेप से बचाये रखना राष्ट्रहित में है, क्योंकि आनेवाले समय में युद्ध सेनानियों से नहीं लड़े जायेंगे, बल्कि अब बौद्धिक युद्ध होगा. कौन-सा राष्ट्र बौद्धिक उत्पादन और नवीन ज्ञान के सृजन में कितना आगे है, वही तय करेगा कि विश्व में वह कितना शक्तिशाली है. एक देश दूसरे देश को अपना माल युद्ध के द्वारा तो नहीं ही बेच सकता है.

माल का बिकना लोगों की पसंद पर निर्भर करेगा और इस पसंद को ही कृत्रिम तरीके से निर्धारित किया जा सकता है. इसलिए ज्ञान उत्पादन केंद्र को बौद्धिक स्वतंत्रता देने की जरूरत होगी. यदि शासक वर्ग विश्वविद्यालयों को अपने अधीनस्थ करने का प्रयास करेंगे, तो वहां बुद्धिजीवी नहीं, बल्कि जयघोष करनेवाले चारण ही रह जायेंगे और चारण भक्ति के कसीदे तो पढ़ सकते हैं, लेकिन नवीन ज्ञान सृजन नहीं कर सकते हैं.

इसलिए राज्य की जिम्मेदारी है कि मुक्तहस्त इन ज्ञान केंद्रों पर खर्च करे, बिना यह परवाह किये कि वैचारिक रूप से वहां के छात्र और शिक्षक उनके साथ हैं या नहीं. सरकारों के लिए विश्वविद्यालय एक तरह से उनकी नीतियों की सफलता-असफलता के लिए फीडबैक देने की व्यवस्था है. आखिर भारत में यह प्रचलित है कि 'निंदक नियरे राखिये आंगन कुटी छवाय, बिन पानी साबुन बिना निर्मल करत सुभाय.' बिहार सरकार ने यदि बिना इस बात की परवाह किये कि नियुक्त होनेवाला शिक्षक उनके राजनैतिक विचारों को माननेवाला है कि नहीं, अपना काम किया है, तो हमें समझना चाहिए कि बिहार की उच्च शिक्षा में बदलाव की उम्मीद है. बिहार सरकार का यह प्रयोग केंद्र सरकार और अन्य राज्य सरकारों के लिए प्रेरणा का काम करे, तो अच्छा है. उम्मीद है कि चुनाव के तुरंत बाद राजनेताओं का जो कलुषित मानस है, उससे ध्यान-मनन करने से मुक्ति मिल पायेगी और भारत के उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नीतियों का निर्माण निष्पक्ष और राष्ट्रहित में होगा.

भारत-अमेरिका संबंधों में खटास

डॉ अश्विनी महाजन
एसोसिएट प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय
ashwanimahajan@rediffmail.com

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने 4 मार्च, 2019 को अमेरिकी कांग्रेस को पत्र लिखकर भारत को व्यापार में दी जानेवाली सुविधा जीएसपी यानी जनरलाइज्ड सिस्टम ऑफ प्रिफ्रेरेंसेस को वापस लेने की इच्छा जतायी थी. उनका कहना है कि अमेरिका को अपने बाजारों में उपयुक्त पहुंच का आश्वासन देने में भारत असफल रहा है. ट्रंप ने तुर्की से भी इस सुविधा को वापस लेने का फैसला लिया है. अब अमेरिकी सरकार ने भारत से भी जीएसपी के अंतर्गत वरीयता के आधार पर आयात की सुविधा वापस ले ली है. अमेरिका कई देशों को जीएसपी की सुविधा देता है. इसके अंतर्गत अमेरिका में कई भारतीय सामानों को शुल्क के बिना आयात की अनुमति है. यह सुविधा वस्त्र, चमड़े की वस्तुओं, इंजीनियरिंग वस्तुओं तथा कीमती पत्थरों एवं आभूषणों आदि पर उपलब्ध है. वर्ष 2018 में अमेरिका को होनेवाले भारतीय निर्यात का कुल मूल्य 54.5 अरब डॉलर था, जिसमें से मात्र 5.6 अरब डॉलर के निर्यात में ही जीएसपी सुविधा है और इससे भारत को मात्र 0.19 अरब डॉलर के आयात शुल्क की बचत होती है.

भारत से आयात कम करने के लिए अमेरिका अन्य तरीके से भी पूरा प्रयास कर रहा है. पिछले कुछ समय से वह हमारे सामान पर आयात शुल्क बढ़ा रहा है, जिससे हमारे निर्यात प्रभावित हो रहे हैं, वहीं भारत का इस बारे में रुख ज्यादा नरम रहा है. जब भी कोई देश किसी दूसरे देश के सामान पर आयात शुल्क बढ़ाता है, तो जबाव में वह देश भी आयात शुल्क बढ़ाता है. लेकिन, अमेरिका के प्रति भारत की अपेक्षित जवाबी कार्यवाही स्थगित की जा रही है. ऐसी नरमी दूसरे देश को आक्रामक होने का मौका देती है.

संकेत हैं कि अमेरिकी वस्तुओं पर जो आयात शुल्क 16 मई से बढ़ाये जाने थे, उन्हें एक महीने के लिए टाल दिया गया है. शायद सरकार को उम्मीद है कि अमेरिका अपने फैसले पर पुनर्विचार करेगा. फिलहाल, अमेरिका को भारत के साथ व्यापार में मात्र 21.3 अरब डॉलर का ही घाटा है, जबकि चीन के साथ उसका घाटा 566 अरब डॉलर है. इसके बावजूद अमेरिकी प्रशासन का भारत के प्रति ऐसा व्यवहार दोस्ती पर प्रश्न-चिह्न लगाता है. अफगानिस्तान में ढांचागत विकास के भारतीय प्रयासों का मजाक उड़ाना और दूसरी तरफ पाकिस्तान के साथ आवश्यक सख्ती न दिखाना, अमेरिका पर संदेह को पुख्ता करता है. अमेरिका को लग रहा है कि ट्रंप की अफगानिस्तान से निकलने की नीति में पाकिस्तान सहयोगी हो सकता है.

अमेरिका अपनी कंपनियों के हित के लिए हमेशा प्रयासरत रहता है और वह सरकारों पर दबाव बनाता है. भारत में कई ऐसी अमेरिकी कंपनियां हैं, जिनके कार्यकलाप भारतीय हितों के अनुरूप नहीं हैं. कुछ समय पहले अमेरिका ने भारत सरकार पर दबाव बनाया कि वह अपना पेटेंट कानून बदल कर अमेरिकी कंपनियों को दवाइयों पर पेटेंट अवधि खत्म होने के बाद भी फिर से पेटेंट की अनुमति दे दे. पेटेंट कानूनों में बदलावों के लिए भी दबाव बनाया गया. भारत सरकार ने जब अमेरिकी ई-कॉमर्स कंपनी एमेजॉन पर शिकंजा कसा, तो अमेरिका ने फिर से इस नीति को बदलने की मांग की. यह आश्चर्यजनक भी है क्योंकि ट्रंप अपने देश में स्वयं एमेजॉन के घोर विरोधी हैं.

आज अमेरिका को व्यापार में भारत से 25 गुणा ज्यादा घाटा चीन से है, उसके बावजूद वह चीन से समझौते का हाथ बढ़ा रहा है और भारत के प्रति सख्ती कर रहा है. उसने सूचना प्रौद्योगिकी उत्पादों पर आयात शुल्क घटाने की मांग भी की है. पिछले साल भारत ने इन उत्पादों पर आयात शुल्क 10 प्रतिशत से बढ़ा कर 20 प्रतिशत कर दिया था. अमेरिका की इस मांग को मानने पर उसे तो कोई फायदा होगा नहीं, अलबत्ता चीन के मोबाइल फोन पहले से कहीं ज्यादा मात्रा में भारत आने लगेंगे. भारतीय नेतृत्व को अमेरिका के साथ सख्ती से पेश आना जरूरी है, क्योंकि अमेरिका का यह रुख उसके आर्थिक हितों से ज्यादा उसकी दादागिरी को दर्शाता है.

अमेरिका को नहीं भूलना चाहिए कि भारत उसके आर्थिक और सामरिक हितों के लिए उपयोगी देश है. आगे बढ़ती भारतीय अर्थव्यवस्था उसकी अर्थव्यवस्था के लिए शुभ संकेत है. अमेरिका द्वारा भारत को निर्यात होनेवाली एक बड़ी मद पेट्रोलियम तेल और गैस है, जो 4.5 अरब डॉलर के बराबर है. इसके और बढ़ने की संभावना है. अमेरिका द्वारा भारत को अगले सात सालों में 300 बोइंग विमान बेचे जाने है, जिनकी कुल लागत 39 अरब डॉलर है. इसके अतिरिक्त अमेरिका से अनेक रक्षा सौदे भी हो रहे हैं. इसलिए अमेरिका के साथ भारतीय व्यापार का अधिशेष घाटे में बदल सकता है.

अमेरिका को समझना होगा कि भारत के साथ सहयोग से वह अपने हितों को बेहतर ढंग से संरक्षित कर सकता है. भारत सरकार के लिए देश में रोजगार, जन स्वास्थ्य और अपने उद्योगों की रक्षा प्राथमिक कर्तव्य है.

अमेरिका को समझना होगा कि भारत के साथ सहयोग से वह अपने हितों को बेहतर ढंग से संरक्षित कर सकता है. भारत सरकार के लिए देश में रोजगार, जन स्वास्थ्य और अपने उद्योगों की रक्षा प्राथमिक कर्तव्य है. इसलिए चाहे एमेजॉन और वालमार्ट पर शिकंजा कसने की बात हो या भारत के इलेक्ट्रॉनिक और टेलीकॉम उद्योग के संरक्षण हेतु आयात शुल्क बढ़ाने की बात हो, भारत की चिंताओं को समझते हुए अमेरिका को अपना रुख ठीक करना होगा. यदि ऐसा नहीं होता है, तो भारत को अपने हितों की रक्षा करनी ही होगा.

आपके पत्र

भाषा की विविधता कायम रहे

क्या प्रस्तावित त्रिभाषा शिक्षा नीति में जोर-जबर्दस्ती से काम लेने का प्रावधान है? दक्षिण के राज्य तो इसे अपने क्षेत्रीय भाषा पर चोट के रूप में लेने लगे हैं. केंद्र सरकार भले ही यह कहे कि यह अभी ड्राफ्ट की शक्ल में है, फिर भी दक्षिण के राज्यों को इस पर अपनी राजनीति चमकाने का मौका मिला गया है. स्थानीय भाषा के साथ-साथ हिंदी और अंग्रेजी को अनिवार्य करने के विचार मात्र से अहिंदी भाषी लोग परेशान होने लगे हैं. यह राष्ट्रवादी नीति के तहत उठाया गया कदम प्रतीत हो रहा है. आजादी के पहले, 1937 में भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने तमिलनाडु में हिंदी को थोपने का प्रयास किया था, जिसका जम कर विरोध हुआ था. आजादी के बाद नेहरू ने फिर से प्रयास किया, मगर तुरंत बैकफुट पर आ गये. उसी विरोध में तमिलनाडु से कांग्रेस का वर्चस्व खत्म होना और द्रविड़ियन पार्टियों का उदय होना शुरू हुआ. हमारे संविधान में यह कहीं नहीं लिखा है कि हिंदी एक राष्ट्रीय भाषा है, बल्कि इसे आधिकारिक भाषा बताया गया है. विविधता में ही एकता है. एकरूपता की कोई जरूरत नहीं. हम अब तक एक थे, हैं और रहेंगे. इसलिए भाषाई विविधता को संकुचित करने की सोच सरकार को मन से निकाल देनी चाहिए.

जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर

मौका भी है, दस्तूर भी

चुनाव हारने के बाद नैतिक जिम्मेवारी लेना और इस्तीफे देना एक आम रिवाज है. देश की दूसरे नंबर की सबसे बड़ी राष्ट्रीय पार्टी होने के नाते कांग्रेस के अध्यक्ष का दबाव में दिखना अप्रत्याशित भी नहीं है. कांग्रेस पुराने ढर्रे पर चल कर सभी नुकसानों की भरपाई की नाकाम कोशिश करती रही. पार्टी मुखिया के अंदाज में गर्मजोशी की कमी पहले ही जाहिर हो चुकी थी. वंशवाद के दाग से उबरने की कोशिशों के बावजूद वंश के चक्रव्यूह से निकलने में पार्टी पूरी तरह असफल रही. डरे-सहमे कांग्रेस अध्यक्ष के मुंह से आखिरकार वह दर्द छलक ही आया. बेशक कांग्रेस की जड़ को दीमकों ने खोखला कर दिया है, मगर निजात पाने की कोशिशों में कहीं पुराना दरख्त जमींदोज न हो जाए. ऐसे में दल में नयी जान फूंकने के वास्ते एक जादुई चेहरे की जरूरत होगी, जो राजनीति के पुराने सिलेबस से निकल कर केमेस्ट्री के नये नुस्खे आजमाने का हौसला रख सके.

एमके मिश्रा, मां आनंदमयीनागर, रातू, रांची

सिक्कों के जंजाल से देवघर बेहाल

देवघर में एक और दो रुपये के सिक्कों को लेकर लोगों की अवधारणा बदलने का नाम नहीं ले रही. देवघर में आज भी दुकानदार इन सिक्कों को लेने से साफ मना कर रहे हैं. इससे जहां सामान्य लोगों को हर दिन परेशानी का सामना करना पड़ रहा है, वहीं छोटे विक्रेता, जिनकी आमदनी ही कम मूल्य के उत्पादों से होती है, व्यापार में नुकसान उठा रहे हैं. पेट्रोल पंप जैसे अतिविशिष्ट प्रतिष्ठान भी इस समस्या से अछूते नहीं हैं. गौरतलब है कि ऐसा करना भारतीय दंड संहिता के तहत एक अपराध है और धारा 124ए के तहत इसे देशद्रोह की संज्ञा में भी लिया जा सकता है. प्रशासन से अपील है की इस बारे में लोगों को जागरूक करे और मसले का अविलंब समाधान करे.

निरुपम निशांत, देवघर

बोधि वृक्ष

मन के भीतर

ऐसा कुछ है जो उनके बाहर है? हां, नहीं है. तो कहा जाता है, जो सभी कुछ अंकुरित होते हैं, जो सृष्ट होता है, वह मुझसे अंकुरित है. परमपुरुष चिंतन कर रहे हैं, इसलिए मानव अस्तित्व है. जितना ही हाथ-पैर क्यों न पीटे और कहे-'हे परमपुरुष! मैं तुम्हें नहीं मानता, मैं तुम्हें मान नहीं रहा. यह भी वह कहेगा इस मन के भीतर से. हाथ-पैर पटकेगा, परमपुरुष के मन के भीतर से, इसलिए वही मनुष्य बुद्धिमान है, जो मन ही मन परमपुरुष से कहता है-हे परमपुरुष, तुमने तो सब कुछ ही जान लिया है. अब मुझे खींच कर, उठा तुम अपनी गोद में बिठा लो. मैं बहुत गहरे नीचे उतर गया हूं, तुम्हारे हृदय के भीतर ही तो, अतः तुम चाहने पर क्या मुझे उद्धार नहीं कर सकते? ऐसा कुछ भी नहीं है. तब यह भी तुम कर सकते हो.' विद्यापति कहते हैं कि चेष्टा से मनुष्य अब क्या कर सकता हैं? परमपुरुष से जो शक्ति पाया है, उससे ही काम करने की चेष्टा करता है. परमपुरुष के दिये कर्म संपूर्ण करने की चेष्टा करता है और व्याकुल होकर इस बात को ही कहता है या बोल सकता है- हे परमपुरुष! इस सृष्टि के आदि में भी तुम्हीं थे और सृष्टि की यदि किसी काल में अंत न हो तो उसमें भी तुम्हीं हो. अर्थात तुम आदि के नाथ हो. मैं तो आदि-अनादि के बीच में ही हूं और मेरा यदि तुम मालिक हुए, तब मुझे मुक्ति दिलाने के लिए, मेरा परित्राण करने का दायित्व क्या तुम्हारा नहीं है? निश्चय ही दायित्व है, अतएव, तुम मुझे मेरे भलाई के लिए जो उचित समझो करो. और मेरी भलाई के लिए जो उचित-अनुचित है, उसे तुम मुझसे कहीं अधिक अच्छा समझते हो. अतः मेरे लिए जो कुछ करणीय है, उसे तुम करो. तुम करोगे और मैं तुम्हें बस केवल उस बात को ही सुनाये जाऊंगा कि- मैं तुम्हारा हूं, अतएव, मेरे प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य भी है और तुम यदि कहो कि तुम्हारा मेरे प्रति दायित्व है कि नहीं, उसे भी तुम स्मरण करा देनेवाले कौन हो? तब मैं कहूंगा मुझे तुमने वचन क्यों दी है? इसी से न मैं कह सकता हूं कि मुझे यदि वचन न देते तब मैं नहीं कहता.

श्री श्री आनंदमूर्ति

कुछ अलग

नदी का जल और भाषा का पानी

सन्नी कुमार
टिप्पणीकार
sunnyand65@gmail.com

रामचरितमानस में एक प्रसंग है, जब माता कौशल्या सीता को आशीर्वाद देते हुए कहती हैं कि 'अचल होउ अहिवात तुम्हारा, जब लगी गंग जमुन जलधारा', अर्थात जब तक गंगा-यमुना में जल रहेगा, तब तक तुम सुहागन रहो. अगर निर्दोष हृदय से आशीर्वाद प्रेषित किया जाए, तो इसमें दीर्घजीविता और सर्वोत्तम का गुण अंतर्निहित होता है. अतः स्वाभाविक है कि मध्यकाल के कवि तुलसीदास ने गंगा-यमुना के प्रवाह की दीर्घजीविता की कल्पना करते हुए ही वैवाहिक जीवन के चिरस्थायी होने के लिए इस उपमा का प्रयोग किया. लेकिन हम क्या इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि कोई आज का कवि इन नदियों के प्रवाह की उपमा आशीर्वाद के रूप में करे?

रामचरितमानस लिखे जाने के बाद से गंगा और यमुना में काफी जल बह भी चुका है और सूख भी चुका है. अब इनका प्रवाह ऐसा नहीं रहा कि इसका उपयोग भाषाशास्त्र में उत्साह और आनंद की उपमा के लिए हो. आज कोई कवि संभावनाओं के छीजने के संदर्भ में ही इसका प्रयोग कर सकता है. मसलन, यमुना की धारा के समान ही इस प्रदेश से समृद्धि भी निरंतर संकुचित होती जा रही है.

वस्तुतः नदियों का सूख जाना महज पर्यावरणीय घटना नहीं है, बल्कि यह भाषा की उर्वरता के कम होने का अभिशाप भी है. हम अक्सर इस पक्ष पर बहुत कम गौर करते हैं और सभ्यता के बनने-बिगड़ने में नदी की भूमिका जैसे भारी-भरकम विषय पर ही अधिकांश ऊर्जा नष्ट कर देते हैं. नदी सिर्फ जीवन ही प्रदान नहीं करती, बल्कि यह भाषा में रंग और रस भी घोलती है. इस पर संकट न जाने कितनी ही जगह भाषा को अर्थहीन बना देती है और 'अर्थहीन भाषा' से बड़ी विडंबना मानव सभ्यता के लिए और क्या होगी! उदाहरण के लिए अंग क्षेत्र के एक गांव में गाये जानेवाले फाग की एक पंक्ति है 'उत्तर दिशा में गंग की धारा', दुर्भाग्य से गंगा की यह उपधारा वहां अब सदानीरा नहीं रही. जिस पीढ़ी ने इस भूगोल को जिया है, वह अपनी स्मृति के सहारे तो इस वाक्य का अर्थ लगा सकते हैं, लेकिन आनेवाली पीढ़ी के लिए यह अर्थहीन हो जायेगी. इस प्रकार क्रमशः यह गीत और संस्कृति के ऐसे अनेक गान विलुप्त हो जायेंगे.

कहने का भाव यह है कि नदियों का संरक्षण और उसकी अविरलता की रक्षा सिर्फ पर्यावरणीय दृष्टि से ही नहीं, बल्कि भाषायी दृष्टि से भी जरूरी है. नदी की राह बदलने से संस्कृति का व्याकरण भी बदल जाता है. एक भाषा अनुरागी के लिए इससे अधिक त्रासद अनुभूति और क्या होगी कि उत्साह और गति के लिए प्रयोग में आनेवाले प्रतीक अब जर्जर होकर निराशा और विराम की व्यंजना तक सिमट गये हैं! भाषा का 'पानी' बचा रहे, इसके लिए आवश्यक है कि नदी में पानी बचा रहे. भाषा प्रेमियों को इस नाते भी नदियों के जीवन के प्रति अधिक सजग होना चाहिए. अंत में यह उम्मीद कि कोई 'इंदीवर' फिर लिख सके 'नदिया चले चले रे धारा..

देश दुनिया से

सीरियाई संकट और अमेरिका

वर्ष 2011 में सीरियाई क्रांति शुरू होने के बाद से ही सीरिया भयंकर आर्थिक संकट से गुजर रहा है. ईंधन, गैस और बिजली की जबर्दस्त कमी के कारण नागरिकों के साथ ही बशर अल-असद के पक्के समर्थक भी अब निराश हो गये हैं और सार्वजनिक रूप से बशर के खिलाफ असंतोष व्यक्त कर रहे हैं. इसे विडंबना ही कहा जायेगा कि सीरियाई सरकार और इसके समर्थक क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बशर की स्थिति सुधारने के प्रयास में विद्रोहियों के खिलाफ जीत का दावा कर रहे हैं. साथ ही, युद्ध से तबाह इस देश के पुनर्निर्माण के लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय को अनुदान शुरू करने के लिए तैयार कर रहे हैं. यूं तो इस संकट के बढ़ने के लिए अनेक आंतरिक कारक जिम्मेदार हैं, लेकिन हाल ही में वाशिंगटन द्वारा तेहरान के खिलाफ अधिकतम दबाव बनाने से ईरान द्वारा दमिश्क को दिये जाने वाले वित्तीय व ऊर्जा सहायता में कमी आयी है, जिसका सीरिया पर निर्णायक प्रभाव पड़ा है. इस कारण सीरियाई सरकार पर ईरान का प्रभाव कमजोर हुआ है और रूस शक्तिशाली हो रहा है और उसे अपने खर्चे के बूते यहां अर्थपूर्ण लाभ उठाने की अनुमति मिल गयी है.

-अली बकीर के लेख का अंश

कार्टून कोना

साभार : कार्टून मूवमेंट

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : 0651-2544006,
मेल करें : eletter@prabhatkhabar.in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो. लिपि रोमन भी हो सकती है